क्योंकि इस जगत् में सकामकर्म का फल अतिशीघ्र होता है।।१२।।

### तात्पर्य

जनसाधारण में इस प्राकृत-जगत् के देवताओं के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति व्याप्त है। विद्वत्ता का दम्भ करने वाले अल्पज्ञ मनुष्य इन देवताओं को श्रीभगवान् के विविध रूप मानते हैं। यथार्थ में ये देवता भगवान् के रूप नहीं हैं; ये तो वास्तव श्रीभगवान् के भिन्न-अंश ही हैं। श्रीभगवान् एक हैं, उनके भिन्न-अंश अनेक हैं। वेद कहते हैं: **नित्यो नित्यानाम्**—श्रीभगवान् एक हैं। **ईश्वरः परमः कृष्णः** श्रीकृष्ण एकमात्र परात्पर परमेश्वर हैं। देवताओं को इस प्राकृत-जगत् की व्यवस्था का अधिकार उन्हीं से प्राप्त है। ये देवता भिन्न-भिन्न मात्रा में प्राकृत शक्ति से युक्त जीव हैं **(नित्यानाम्)**; अतएव वे परमेश्वर नारायण, विष्णु अथवा श्रीकृष्ण के समकक्ष नहीं हो सकते। इस कारण जो श्रीभगवान् एवं देवताओं को एकसमान मानता है वह नास्तिक अथवा पाखण्डी है। अन्य देवताओं के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या, ब्रह्मा, शिव, आदि भी श्रीकृष्ण की समकक्षता नहीं कर सकते। वस्तुतः श्रीभगवान् ब्रह्मा तथा शिव के भी आराध्य हैं **(शिवविरिंचिनुतम्)**। अतः बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे भी कितनी मानव-अग्रणी हैं जिन्हें मूर्ख लोग अवतार समझकर पूजते हैं। **इहः देवताः** पद शक्तिशाली मनुष्यों अथवा प्राकृत-जगत् के देवगण का वाचक है। परन्तु नारायण, विष्णु अथवा कृष्ण नामक भगवान् इस संसार में स्थित नहीं हैं। वे प्राकृत-सृष्टि से सर्वथा परे हैं। स्वयं निर्विशेषवादियों के अग्रणी श्रीपाद् शंकराचार्य खुले रूप में घोषित करते हैं कि नारायण अथवा श्रीकृष्ण इस प्राकृत सृष्टि से अतीत हैं। इस पर भी मूर्ख **(हतज्ञान)** लोग तात्कालिक फल की इच्छा से देवयजन करते हैं। उन्हें फल की प्राप्ति तो होती है, पर वे यह नहीं जानते कि इस प्रकार होने वाला क्षणभंगुर फल अल्पज्ञों के ही योग्य है। जो विवेकी है, वह कृष्णभावना में स्थित रहता है; इसलिए उसे क्षणिक सुख के लिए तुच्छ देवताओं का यजन करने से कोई प्रयोजन नहीं होता। ये प्राकृत देवता और उसके उपासक संसार के संहार के साथ नष्ट हो जायेंगे। देवताओं के वरदान प्राकृत और क्षणिक हैं; प्राकृत लोक और उनके निवासी, देवता एवं उनके उपासक ब्रह्माण्ड-सागर में उठने वाले बुद्बुदे मात्र हैं। परन्तु फिर भी मानव इस संसार में भूमि, परिवार तथा अन्य सुख-साधन आदि अनित्य ऐश्वर्यों के लिए उन्मत्त हो रहा है। इन नाशवान् पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह देवों अथवा समाज के किसी शक्तिशाली मनुष्य की सेवा करता है। किसी राजनीतिज्ञ की अभ्यर्चना के द्वारा मन्त्रीपद की प्राप्ति को महान् वरदान समझ लिया जाता है; इसलिए सब मनुष्य नेता कहलाने वाले दुष्टों का अभिवादन करते हैं और ऐसा करने से उनकी अभीष्ट-सिद्धि हो भी जाती है। दुर्भाग्यवश ऐसे मूढ़ कृष्णभावना में अभिरुचि नहीं रखते, जिससे भवरोग का स्थायी निदान हो सकता है। वे इन्द्रियतृप्ति के लिए आतुर हो रहे हैं; अतः इन्द्रियतृप्ति की अल्प सुविधा के लिए देवपदासीन शक्तिशाली जीवों की आराधना के प्रति आकृष्ट हैं। यह श्लोक संकेत करता है कि जनता में उस मनुष्य की प्राप्ति